जैन वाङ्मय और उसका क्रमिक विकास

—श्री मदन कुमार मेहता, कलकत्ता

जैन वाङ्मय अतल जलधि के सदृश गहन, विशाल व गंभीर है। विरल अध्यवसायी मनीषियों ने ही उसमें अवगाहन करने का प्रयत्न किया है और प्राप्त मुक्ताकण चूर्णियों और टीकाओं के रूप में प्रस्तुत कर भावी संतति को गहन श्रुत-वारिधि में आलोड़न के लिये प्रेरित किया है।

वाङ् का वाचिक अर्थ वाक् है। अर्थात् जिस साहित्य का सृजन वाचना या वाणी के द्वारा हो, जिसे प्रबुद्ध व्यक्ति ग्रहण कर अपने स्मृति-कोष में संग्रह कर ले। अतः वाङ्मय को श्रुत भी कहा गया है। जो ज्ञान सुनकर अधीत किया जाय वह श्रुत है। श्रुत का यह क्रम भगवान महावीर के पश्चात् परवर्ती अनेक आचार्यों तक अविच्छिन्न रूप में चला। ज्ञान की यह मंदाकिनी एक के कंठ से निःसृत होकर दूसरे के श्रवण कुंड में गिरकर आगे प्रवहमान हुई और पुनः दूसरे के कण्ठ को रसाप्लावित करती हुई अन्य के कर्ण कुहर में विनिमज्जित हो गई। यह क्रम प्रायः सहस्र वर्ष पर्यन्त चला।

तीर्थंकर महावीर जैन धर्म के अन्तिम तीर्थपति थे। एक तीर्थंकर अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की देशना को प्ररूपित नहीं करता। अतः सृजन के रूप में हमें भगवान महावीर के पूर्वकालीन तीर्थङ्करों की वाणी उपलब्ध नहीं है। वर्तमान में अर्द्ध-मागधी वाङ्मय महावीर की देशना पर ही आधारित है जिसे उनके गणधरों ने ग्रथित किया। उसी ग्रथित वाणी को हमने आगम नाम से संज्ञित किया है।

आगम के दो प्रकार हैं : अर्थागम और सूत्रागम।

तीर्थङ्कर अर्थ का जो व्याख्यान करते हैं उसे अर्थागम कहते हैं और गणधर उस व्याख्यात अर्थ का जो सूत्ररूप में ग्रन्थन करते हैं उसे सूत्रागम कहा गया है।

दिगम्बर मान्यता में तीर्थङ्कर की वाणी अनक्षरा है। वे उपदेश की भाषा में कुछ नहीं बोलते। उनके रोम-रोम से दिव्य ध्वनि निःसृत होती है और समवसरण में वही ध्वनि उपस्थित श्रोतागण की अपनी-अपनी भाषाओं में परिणत हो जाती है।

श्वेताम्बर परम्परा में तीर्थङ्कर अर्द्ध-मागधी भाषा में प्रवचन करते हैं। वह अर्द्ध-मागधी भाषा समवसरण में उपस्थित सभी आर्यों-अनार्यों की भाषा में परिणत हो जाती है। जैनागमों में इसे तीर्थंकरों का वचन-वैशिष्ट्य कहा गया है।

भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे। तीर्थंकर महावीर अर्थ रूप में जो उपदेश देते थे उन्हें गणधर शब्द-बद्ध कर लेते थे। गणधरों द्वारा ग्रथित सूत्रागम द्वादशांगी के रूप में विद्यमान है। इन बारह अंग शास्त्रों में बारहवां दृष्टिवाद अंग विलुप्त है। ये सभी गणधर चौदह पूर्वधर, द्वादशांगी वाणी तथा समस्त गणिपिटक के धारक थे।

भगवान महावीर की उपस्थिति में ही उनके नौ गणधर कालगत होकर निर्वाण प्राप्त हो गये थे। महास्थविर इन्द्रभूति गौतम व महास्थविर आर्य सुधर्मा महावीर के निर्वाण के पश्चात् विमुक्त हुए। अतः महावीर के निर्वाण के पश्चात् आर्य सुधर्मा उनके उत्तराधिकारी हुए। यद्यपि महाश्रमण इन्द्रभूति गौतम ज्येष्ठ थे परन्तु महावीर के निर्वाण के साथ ही उन्हें केवल-ज्ञान व केवल-दर्शन की प्राप्ति हो गई थी। उन्होंने राग और द्वेष को जीत लिया था। वे वीतरागी हो गये थे। वीतरागी श्रमण संघ-शासक नहीं बनते अतः संघ-शासन के संचालन का भार आर्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधर्मा पर पड़ा। वर्तमान में जितनी भी श्रमण परम्परायें विद्यमान हैं वे सभी सौधर्म परम्परा से ही संबंधित हैं। अतः भगवान महावीर के पश्चात् द्वादशवाणी के संदेश-वाहक आर्य सुधर्मा बने। उन्होंने महावीर-वाणी का द्वादश अंगों के रूप में पुनराकलन किया। वर्तमान आगम साहित्य सुधर्मा की ही देन है। द्वादश अंग निम्न हैं :

(१) आचारांग (२) सूत्रकृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) (६) ज्ञाता-धर्मकथांग (७) उपासकदशांग (८) अन्तगडदशांग (९) अनुत्तरोपपातिक (१०) प्रश्नव्याकरण (११) विपाक एवं (१२) दृष्टिवाद। अंगों के साथ उपांगों का भी सृजन किया गया। अंग और उपांग की यह पद्धति मात्र जैन श्रुत साहित्य में ही नहीं वरन् वैदिक साहित्य में भी विद्यमान है। वेदों के सम्यग् अध्ययन के लिये वेदांगों की रचना की गई थी। बिना वेदांगों के अध्ययन के वेदों का समुचित रूप नहीं समझा जा सकता।

जैन श्रुत साहित्य में भी अंगों के साथ उपांगों की रचना की गई है। ये उपांग भी अंग सूत्रों की तरह संख्या में १२ ही हैं, अन्तर इतना ही है कि अंग गणधरों द्वारा गुंफित है तथा उपांग स्थविर आचार्यों द्वारा रचित है। १२ उपांग निम्न हैं :

(१) उववाइय (२)रायपसेणइय (३)जीवाजीवाभिगम (४) पण्णवणा (५) सूरपण्णत्ति (६) चन्दपण्णत्ति (७) जंबूद्दीप पण्णत्ति (८) णिरयावलिया (९) कप्पवदंसिया (१०) पुप्फिया (११) पुप्फचूलिया (१२) वण्हिदशा।

१२ अंगों की विषय दृष्टि के अनुसार ये १२ उपांग परस्पर सम्बद्ध होने चाहिये परन्तु इस प्रकार का पारस्परिक सामंजस्य इनमें नहीं मिलता। यह एक आश्चर्य का विषय है।

जैन वाङ्मय में छेदसूत्रों का अपना स्थान है। श्रमणों के आचार विषयक नियम जो भगवान महावीर ने निर्धारित किये थे उनको उत्तरवर्ती आचार्यों ने छेद सूत्रों में विविध परिवर्त्तन के साथ ग्रन्थित कर लिये। साधु जीवन के लिये छेद सूत्रों का अध्ययन आवश्यक माना गया है। बिना छेद सूत्रों के गम्भीर अध्ययन कोई साधु, आचार्य या उपाध्याय जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

छेद सूत्र छः है :

(१) निशीथ (२) महानिशीथ (३) व्यवहार (४) दशाश्रुतस्कन्ध (५) वृहत्कल्प (६) पंचकल्प।

मूल सूत्र चार हैं :

(१) उत्तराध्ययन (२) दशवैकालिक (३) आवश्यक (४) पिण्डनिर्युक्ति तथा ओघनिर्युक्ति।

इन सूत्रों का मूल नाम क्यों पड़ा यह भी विचारणीय प्रश्न है। प्राचीन ग्रन्थोंमें मूल शब्द कहीं भी व्यवहृत नहीं हुआ है। इन सूत्रों का अपने में अत्यन्त महत्त्व है। वस्तुतः भगवान महावीर के मूल भावों का इनमें चयन किया गया था, अतः इनका नाम मूल पड़ा हो—ऐसा सापेक्ष अर्थ परिकल्पित किया जा सकता है। अथवा उनमें धर्म, आचार, दर्शन एवं आदर्शों का अद्भुत संकलन उपलब्ध है, अतः ये मूल आदर्शों से परिपूर्ण मूल सूत्र हैं।

नन्दीसूत्र एवं अनुयोग द्वार :

नन्दीसूत्र के रचयिता आचार्य देवर्द्धिगणि हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इनमें अनेक विषयों का तलस्पर्शी प्रतिपादन है। जैन वाङ्मय के विकास में इसका बहुमूल्य योगदान रहा है।

अनुयोग द्वार के रचयिता आचार्य आर्यरक्षित हैं। यह ग्रन्थ प्रश्नोत्तर शैली से रचित है। विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तरों द्वारा प्रकाश डाला गया है। इसमें बहुत ही गंभीर विषयों का सरलता से प्रतिपादन किया गया है।

दस पइण्णग (दश प्रकीर्णक)

प्रकीर्णक ग्रन्थ उन ग्रन्थों को कहा जाता है जो तीर्थङ्करों के शिष्यों द्वारा विविध विषयों पर रचे जाते हैं। प्रकीर्णक ग्रन्थों की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। वर्तमान में दस प्रकीर्णक ग्रन्थ माने गये हैं—

(१)चउसरण (२)आउर पच्चक्खाण (३)महापच्चक्खाण (४) भत्तपरिण्णा (५) तंडुलवेयालिय (६) संथारग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) गच्छायार (८) गणिविज्जा (९) देविंदथव (१०) मरणसमाही।

उपर्युक्त आगमों में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समुदाय मुख्यतया ४५ आगम स्वीकृत करता है जो इस प्रकार है :

११ अंग
१२ उपांग
६ छेद
४ मूल
२ नन्दी सूत्र व अनुयोगद्वार
१० प्रकीर्णक

४५

स्थानकवासी व तेरापंथी सम्प्रदाय द्वारा ३२ आगम ही प्रामाणिक रूप में स्वीकार किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं :

११ अंग सूत्र
१२ उपांग सूत्र
४ छेद सूत्र
४ मूल सूत्र
१ आवश्यक सूत्र

३२

दिगम्बर परम्परा में वर्तमान में अंग-उपांग साहित्य विद्यमान नहीं है। उनकी मान्यता है कि वीर-निर्वाण के पांच सौ वर्ष पश्चात न अंग साहित्य ही रहा और न पूर्व ज्ञान के धारक ही रहे। मात्र पूर्वज्ञान व ग्यारह अंगों का आंशिक ज्ञान ही रहा जिसे परवर्त्ती आचार्यों ने विभिन्न ग्रन्थों में ग्रथित किया है।

आर्य सुधर्मा के निर्वाण के पश्चात आर्य जम्बू उनके स्थान पर पट्टधर हुए। जम्बू अन्तिम केवली थे। आर्य जम्बू के उत्तराधिकारी आर्य प्रभव हुए। आर्य प्रभव के उत्तराधिकारी आर्य शय्यम्भव हुए। ये श्रुत केवली थे तथा दशवैकालिक जैसे महान् सूत्र के रचनाकार थे। शय्यम्भव की दशवैकालिक के रूप में जैन वाङ्मय को अनुपम देन है। आर्य यशोभद्र आचार्य शय्यम्भव के अन्तेवासी थे। उनके अवसान के पश्चात् आर्य यशोभद्र के ऊपर संघ-संचालन के साथ समस्त श्रुत साहित्य अधीत करने-कराने का भार आया। वे चौदह पूर्वधर थे।

आचार्य यशोभद्र ने ही नन्द राजाओं को प्रतिबोधित कर अर्हत् धर्म में दीक्षित किया था।

आचार्य यशोभद्र ने एक नवीन परम्परा का सूत्रपात किया। उन्होंने एक के स्थान पर दो उत्तराधिकारी मनोनीत किये। एक थे आचार्य सम्भूतिविजय और दूसरे थे आचार्य भद्रबाहु। संघ-संचालन का भार ज्येष्ठ उत्तराधिकारी सम्भूतिविजय पर था। आचार्य भद्रबाहु का उनके जीवन काल तक संघ-व्यवस्था से सीधा कोई संबंध न था।

भद्रबाहु महाप्रभावक आचार्य थे। ये छेद सूत्रों के प्रणेता तथा चतुर्दश पूर्वधर थे। इनके निधन के साथ ही चतुर्दश पूर्वधर परम्परा समाप्त हो गई। जम्बू स्वामी के अनन्तर महावीर धर्म संघ के ये पंचम आचार्य थे।

प्रथम वाचना—आचार्य भद्रबाहु के काल में १२ वर्षीय दुष्कर अकाल पड़ा। इससे सारी संघ-व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। साधु समाज पर भी इसका भयंकर प्रभाव पड़ा। अनेक मेधावी व ज्ञानी श्रमण कालकवलित हो गये, अनेक दूरस्थ प्रदेशों में चले गये। सुनने-सुनाने और अधीत करने की परम्परा में विक्षेप पड़ गया। ज्ञान का बहुमूल्य भण्डार लेखन के अभाव में विस्मृति के गर्भ में समा गया। दुष्काल के उपरान्त अवशिष्ट साधु समाज पुनः पाटलीपुत्र में एकत्रित हुआ। सबसे पहली आवश्यकता यह महसूस की गई कि श्रुत-सम्पदा का कैसे संरक्षण किया जाय। आचार्य स्थूलिभद्र, जो आचार्य भद्रबाहु के मनोनीत उत्तराधिकारी थे, के नेतृत्व में समागत श्रुतज्ञ श्रमणों द्वारा ११ अंगों का पुनर्संकलन हुआ। इसे हम प्रथम वाचना कहते हैं।

आचार्य भद्रबाहु पर्यन्त श्वेताम्बर व दिगम्बर मान्यता सदृश ही हैं। यहीं से दिगम्बर-श्वेताम्बर श्रुतधारा का प्रवाह दो विभिन्न धाराओं के रूप में प्रवाहित होता है। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार जो श्रुत साहित्य ११ अंग उपलब्ध है—वह तीर्थंकर महावीर द्वारा उपदिष्ट तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणधरों द्वारा ग्रन्थित है। दिगम्बर यह बात स्वीकृत नहीं करते।

द्वितीय वाचना—पाटलीपुत्र की प्रथम वाचना के पश्चात् ग्यारह अंगों का ज्ञान उसी प्रकार श्रुत परम्परा से प्रवाहित रहा। शिष्य ने गुरु से मुखाग्र अधीत किया और स्मृति कोष में संरक्षित कर लिया। पुनः शिष्य ने अपने प्रशिष्य को उसी प्रकार अधीत करवाया। पर स्मृति की भी एक सीमा होती है। शनैः शनैः विशाल ज्ञान राशि को धारण करने वाले शिष्यों-प्रशिष्यों की कमी होती गई। वीर-निर्वाण के सात सौ वर्षों के पश्चात् पुनः १२ वर्षों का दुष्काल पड़ा। नन्दी चूर्णी में उल्लेख है कि अकाल में अनेक मेधावी श्रुतज्ञों का अवसान हो गया। श्रुत परम्परा अस्तव्यस्त हो गई। दुर्भिक्ष के पश्चात् युग प्रधान आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व में मथुरा में श्रुत संरक्षण के लिये आगम-वाचना का आयोजन किया गया। सुविज्ञ आगम-वेत्ता मुनिगणों को बुलाया गया। जिन्हें जिस रूप में स्मरण था उसी रूप में संकलित किया गया। मथुरा में होने से इसे माथुरी वाचना कहते हैं।

माथुरी वाचना के समानान्तर ही आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता में वल्लभी (गुजरात) में एक साधु-सभा समवेत हुई। उसमें भी उपस्थित मुनियों ने अपनी-अपनी स्मृति के आधार पर समस्त अंगों-उपांगों का संकलन व सम्पादन किया। स्मृति आधार होने से इतिवृत्तात्मकता में पिष्ट-पेषण होता है। ग्रन्थ-विस्तार कम करने के लिये अन्य सूत्र का निर्देश देकर सूत्रकार आगे बढ़ गये।

तीसरी वाचना—दो-दो वाचनायें सम्पन्न होने पर भी लेखन द्वारा श्रुत साहित्य सुरक्षित रखने की चेष्टा नहीं हुई। वही मुखाग्र रखने की परिपाटी ही रही। अतः श्रुत साहित्य कुछ ही मेधावी श्रमणों तक ही सीमित रह गया। अतः तत्कालिक समाज ने चिन्तित होकर स्मृति आधार के स्थान पर लेखन द्वारा श्रुत साहित्य को संरक्षित करने का संकल्प किया।

वीर-निर्वाण के एक सहस्र वर्ष पश्चात् आचार्य देवर्धि गणि क्षमाश्रमण के आचार्यत्व में वल्लभी में तीसरी वाचना समायोजित की गई। इसमें समस्त आगम साहित्य लिपिबद्ध किया गया। सम्प्रति जो भी जैन वाङ्मय विद्यमान है उसके लिये हम युगप्रधान आचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के चिरऋणी हैं। यदि ऐसा न होता तो समस्त श्रुत-साहित्य विशृंखलित होकर नष्ट हो जाता अथवा श्रुतज्ञ विद्वानों के अवसान के साथ ही विस्मृति के महासागर में विलीन हो जाता।

आगमों के लिखित रूप में उपलब्ध हो जाने के पश्चात् आचार्यों को अक्षय निधि प्राप्त हो गई। फिर तो सहस्र लोहिये लिपिक सूत्रों की प्रतिलिपियाँ करने में लग गये। नगर-नगर में ज्ञान के भण्डार स्थापित हो गये। मनीषियों को श्रुत सागर में अवगाहन करने का अवसर प्राप्त होने लगा। प्राकृत के साथ संस्कृत शिक्षा की ओर ध्यान गया। फिर तो उनको समझने स्पष्टीकरण करने के लिये चूर्णियों, टीकाओं की रचनायें हुईं। मूल प्राकृत के साथ संस्कृत में टीकायें की गईं। आचार्य हरिभद्र, शीलंकाचार्य, शान्त्याचार्य, मल्लधारी हेमचन्द्र, मलयगिरि, क्षेमकीर्ति, अभयदेवसूरि आदि अनेक महाप्रभावक आचार्यों ने विशेष टीकायें लिखकर श्रुत साहित्य को करामलकवत स्पष्ट कर दिया।

यदि चूर्णियाँ या टीकायें न होतीं तो हम श्रुत ज्ञान में कोरे ही रह जाते।

खंभात, पाटन व जैसलमेर के ज्ञान भण्डार अपने में बहुमूल्य निधियाँ समेटे हुए आज भी श्रुत सुरक्षा की अमर गाथा सुना रहे हैं।

वर्तमान में भी हिन्दी, अंग्रेजी व इतर भाषाओं में जैनागमों का प्रकाशन किया गया है जो स्तुत्य प्रयत्न है। इस सम्बन्ध में हम यदि सम्प्रदायगत कार्य न कर एक मंच से समवेत कार्य करें तो श्रुत साहित्य अधिक महिमामण्डित हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org